कुदरेमुख - मामला पर्यावरण और विकास का

मुज़फ्फर असादी

कर्नाटक के कुदरेमुख क्षेत्र में स्थित कुदरेमुख लौह अयस्क कम्पनी (KIOCL) के खनन कार्य पर सुप्रीम कोर्ट के निर्णय से कई अनिश्चितताओं पर विराम लगा गया है। KIOCL सार्वजनिक क्षेत्र की एक मुनाफा कमाने वाली कम्पनी है। यह निर्णय एक ऐसे वक्त में आया जब कर्नाटक के मांड्या और मैसूर ज़िलों में कावेरी मुद्दे पर संघर्ष जारी हैं। हालांकि प्रभावशाली वोक्कालिगा जाति और सत्ताधारी पार्टी की राजनीति के चलते कावेरी मुद्दे को काफी महत्व मिला लेकिन अन्य कई लोगों के लिए कुदरेमुख सरोकार का एक मुख्य मुद्दा है। मसलन पर्यावरणविद, इकोलॉजिस्ट, बुद्धिजीवी और दीगर सामाजिक समूह। चिकमंगलूर, शिमोगा, दक्षिण कन्नड और उडुपी ज़िलों की एक बड़ी आबादी की आजीविका पर तथा श्रमिकों, आदिवासियों और वहां की इकॉलॉजी पर भी इसके व्यापक असर होंगे। इसके अलावा कुदरेमुख का मसला अपने में कई और भी महत्वपूर्ण विषयों को समेटे है। जैसे राष्ट्रीय उद्यान, इकॉलॉजी-संवेदी ज़मीन कम्पनी को लीज़ पर देना और आदिवासियों का पुनर्वास। यह अस्मिता, संस्कृति, पूंजीवाद, आधुनिकता-पश्चात जीवन और पर्यावरणीय संकट का भी मुद्दा बन गया है। इन मुद्दों को, एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में, पर्यावरण और पूंजीवाद के परस्पर विरोधाभास के बतौर देखा जाना चाहिए।

कुदरेमुख चिकमंगलूर, उडुपी, दक्षिण कन्नड और शिमोगा ज़िलों में फैला है। पश्चिमी घाट के 'घोड़ेनुमा' अक्स से इसे यह नाम मिला है। यह क्षेत्र लौह अयस्क से समृद्ध है। दरअसल पश्चिमी घाट दुनिया के जैव विविधता से समृद्ध 18 इलाकों में से एक है। संरक्षण प्रयासों को केंद्रित करने हेतु डब्ल्यू.डब्ल्यू.एफ. द्वारा चिन्हित 'ग्लोबल 200' क्षेत्र का भी यह एक हिस्सा है। कुदरेमुख 3 महत्वपूर्ण नदियों तुंग, भद्रा और नेत्रवती का उद्गम स्थल भी है।

लेकिन लौह अयस्क खनन ने इस पूरे क्षेत्र की काया पलट दी है। 20वीं सदी की शुरूआत के औपनिवेशिक काल में, इस इलाके में लौह अयस्क की मौजूदगी की बात पता थी। हालांकि 60 के दशक तक लौह अयस्क खनन के कोई गंभीर प्रयास नहीं हुए थे। औपनिवेशिक काल में लौह अयस्क खनन का काम मुख्यतः चिकमंगलूर में केम्मानु गुण्डी में होता था। 1960 के दशक में राष्ट्रीय खनिज विकास निगम (रा.ख.वि.नि.) ने लौह अयस्क खनन में रुचि दिखाई और राज्य सरकार से 5128 हैक्टर ज़मीन लीज़ पर ले ली। 1972 में रा.ख.वि.नि. ने लगभग 613 हेक्टर ज़मीन सरकार को इस समझ से वापिस लौटा दी थी कि समय आने पर सरकार लीज़ पर दी गई ज़मीन पर खनन की इजाज़त दे देगी। 1976 में KIOCL बनने के वक्त रा.ख.वि.नि. ने 4605.02 हैक्टर ज़मीन कम्पनी को सौंप दी। इसमें 3203.55 हैक्टर वन भूमि, 1220.03 हैक्टर अन्य सरकारी ज़मीन और 181.44 कम्पनी की निजी सम्पत्ति थी।

बहरहाल KIOCL के निर्माण को जिस चीज़ ने प्रेरित किया वो थी ईरान के स्व. शाह द्वारा इसमें दिखाई गयी गहरी रुचि। इस इको-संवेदनशील क्षेत्र में खनन उद्योग स्थापित करने हेतु ईरान ने 63 करोड़ डॉलर लगाने पर रज़ामंदी ज़ाहिर की। बदले में इरान के उद्योगों को सान्द्र लौह अयस्क का निर्यात किया जाना था। कम्पनी इसी मंशा से शुरू हुई कि वह औसतन 75 लाख टन सांद्र लौह अयस्क उत्पादन करेगी। ईरान से हुए इस अनुबंध से पहले अमरीकी और जापानी कम्पनियों के समन्वय से खनन उद्योग बनाने के प्रयास हुए थे। चूंकि अयस्क में लौह तत्व केवल 30-33 प्रतिशत तक था इसलिए यह

अनुबंध औंधे मुंह गिरा। हालांकि 1970 के दशक में पश्चिमी घाट क्षेत्र में एक कम्पनी की स्थापना और लौह अयस्क के निर्यात को आधुनिकता के रूप में देखा गया। इससे तटीय पट्टी में पूंजी के कई नए रास्ते खुल गए। कुदरेमुख में एक नई टाउनशिप बनी, मैंगलोर पोर्ट नामक एक नया बंदरगाह बना। इसके बाद खाद कम्पनियां बनीं और स्टेट हाइवे बना। दरअसल 1970 के दशक में कुदरेमुख नाम ही इस क्षेत्र की आधुनिकता का प्रतीक बन गया था। इस दौरान इस कम्पनी के विरुद्ध कोई आवाज़ नहीं उठी। न ही पर्यावरण सम्बंधी मुद्दे सामने आए। 1979 में शाह की सत्ता के ध्वस्त होने के साथ ही इस पर धक्का लगा। बहरहाल, रूमानिया KIOCL के बचाव में आया और एक संयंत्र की स्थापना पर रज़ामंद हुआ। इससे 1980 के दशक में विश्व स्तर पर कम्पनी ने एक बड़े बाज़ार में प्रवेश किया।

आज KIOCL अपने उत्पादन का 82 प्रतिशत जापान, ईरान, चीन, ऑस्ट्रेलिया, बाहरीन, तुर्की और इंडोनेशिया को निर्यात करता है। बाकी का 18 प्रतिशत भारत में ही बेचा जाता है। वैश्विक बाज़ार से इस सम्पर्क के परिप्रेक्ष्य में ही पर्यावरण और पूंजीवाद के बीच का विरोधाभास उभरकर आया। प्रारंभिक लीज़ अवधि (जो 1999 जुलाई में खत्म हो चुकी थी) को आगे बढ़ाए जाने पर पर्यावरणविदों के विरोध से यह विरोधाभास और स्पष्ट व पैना हो गया। उस वक्त इसे एक साल के लिए ही बढ़ाया गया। यहां तक कि केंद्र सरकार ने भी इसे पांच साल तक बढ़ाने की गुहार की थी। लेकिन इसके विरुद्ध जाते सुप्रीम कोर्ट के फैसले से कम्पनी की नियति पर अंततः ताला लग गया है। KIOCL पर पर्यावरण मानकों के उल्लंघन, सांस्कृतिक विस्थापन और सामाजिक जीवन को तहस नहस करने के आरोप लगे हैं। इन तमाम बातों ने कुदरेमुख में एक पर्यावरण आंदोलन का रूप ले लिया। 10 साल बीत जाने के बावजूद, अभी हाल ही के सालों में इस आंदोलन ने तीखा रूप अख्तियार किया है।

पर्यावरण आंदोलन को विस्तार देने वाला एक दूसरा प्रमुख मुद्दा है एक सरकारी आदेश। इस आदेश के ज़रिए सरकार ने कुदरेमुख क्षेत्र को अन्य पांच आरक्षित जंगलों के साथ मिलाकर एक राष्ट्रीय उद्यान घोषित कर दिया है। मगर इसी दौरान KIOCL को मदद देने की गरज़ से राष्ट्रीय उद्यान के कुल 60,032.38 हैक्टर में से 3703.55 हैक्टर को उद्यान सीमा से बाहर रखने का निर्णय समस्यामूलक बन गया। बहसें चल निकलीं; क्या राष्ट्रीय उद्यान के नाम पर आदिवासियों को ज़बरदस्ती बेदखल करना न्यायसंगत है? क्या उन्हें घने जंगलों में बने रहने की अनुमति मिलनी चाहिए? या क्या उन्हें 'पिछड़ा' बने रहने दिया जाए? और अंत में यह कि उनका पुनर्वास कैसे किया जाए? इस परिप्रेक्ष्य में यह दलील कि आदिवासी जंगलों को बरबाद करते हैं, गले नहीं उतरती है। प्रकृति से उनका सहजीवन का सम्बंध है। जंगल से ही उनकी संस्कृति, जीवनशैली और पहचान बनती है। वन-उत्पाद इकट्ठा करने के अधिकार से वंचित किया जाना, जंगल में स्वतंत्र घूमने फिरने पर रोक और झूठे आरोप मढ़े जाने के तरीकों से यह साफ ज़ाहिर है कि वे सरकारी मशीनरी के शिकार हैं। राष्ट्रीय उद्यान के नाम पर सरकार अब जंगल के अन्दर रहने वाले 20,000 आदिवासियों को जंगल से बाहर करने में लगी है। इसका आदिवासी जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, उन्हें नई पहचान बनाने का संघर्ष करना होगा, उनके सांस्कृतिक रिवाज़ों में बदलाव होगा जिससे कुल मिलाकर सांस्कृतिक क्षति होगी और वे हमेशा के लिए सरकार के शिकार होकर रह जाएंगे, जंगल के अंदर भी और बाहर भी।

तीसरा प्रमुख मुद्दा इकॉलॉजी सम्बंधी संकट का है जिसे खनन उद्योग लाने वाला है। इससे नदियां और जैव विविधता खास तौर पर प्रभावित होंगी। कुदरेमुख क्षेत्र अपने शोला जंगल के कारण जाना जाता है। अंदेशा है कि खनन कार्य न केवल सिंचाई को प्रभावित करेगा बल्कि आगे चलकर यह लोगों के सांस्कृतिक तौर-तरीकों को भी बदल देगा। इसके अलावा समय के साथ-साथ ग्रामीण संस्कृति की मौजूदगी की स्मृतियां भी धूमिल

पड़ती जाएंगी। ऐसा इसलिए क्योंकि नदी जल को सांस्कृतिक रिवाज़ों, सभ्यताओं, अस्मिता और जीवनशैली से पहचाना जाता है। कुदरेमुख क्षेत्र में 2 लाख से भी ज़्यादा किसान - 8300 हेक्टर कृषि भूमि के ज़रिए - नदी जल पर निर्भर हैं। नदी जल खोने को जीवनशैली या अस्मिता खोना माना जा सकता है। इसलिए KIOCL को आगे मंजूरी देने समेत खनन का विरोध नदी किनारे के विस्तृत क्षेत्र से हुआ।

कुदरेमुख के विरुद्ध चल रहे खनन विरोधी/पर्यावरण आंदोलन में कई सारे बुद्धिजीवी शामिल हुए हैं। ऐसे ही एक प्रसिद्ध बुद्धिजीवी हैं ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त यू.आर. अनन्तमूर्ति। कुछ माह पहले उन्होंने 'तुंग उलीसी' (तुंग बचाओ) संघर्ष का नेतृत्व किया था। इससे पहले उन्होंने KIOCL द्वारा खनन का विरोध किया था और 'विकास को नई परिभाषा देने की मांग की थी'। इस बहस से या कर्नाटक में पर्यावरण मुहिम से जुड़ने वाले वे पहले साहित्यकार नहीं हैं। 80 के दशक में एक और ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त शिवराम कारंत उत्तर कन्नड के कैगा संघर्ष से जुड़े थे। कारंत का सरोकार उनके साहित्य और पर्यावरण आन्दोलन को उनके सक्रिय समर्थन, दोनों में देखा जा सकता है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास *मुकाज्जिया कनासूगलु* (मुकाजी के सपने) में इकॉलॉजी सम्बंधी मुद्दे को उठाया गया है। अपने साहित्यिक कर्म में उन्होंने पर्यावरण, संस्कृति और जेण्डर के बीच सहजीवी संबंध बनाने का प्रयास किया है।

अपने विभिन्न उपन्यासों और *रुजुवातु* की सम्पादकीय टिप्पणियों में अनंतमूर्ति ने बड़ी परियोजनाओं और जंगलों के विनाश को लेकर चिन्ता ज़ाहिर की है। इस आंदोलन में ज़बरदस्त बदलाव तब आया जब 3 मई के दिन शृंगेरी की एक रैली में मेधा पाटकर ने भाग लिया। इसके बाद 'नव हिन्दुत्व' द्वारा इस आंदोलन और रैली को तोड़ने का प्रयास हुआ। इससे इस आंदोलन पर हमला करना राज्य सरकार के लिए आसान हो गया। नतीजतन सरकार और हिन्दुत्ववादी, अनचाहे ही सही, हमकदम हो चले।

कर्नाटक के इस पर्यावरण आंदोलन से जुड़ने वाले कई और भी 'अनाम' लोग हैं। प्रदेश के बाहर पर्यावरण पर होने वाली बुद्धिजीवियों की बहसों में उनका ज़िक्र नहीं होता। ऐसा ही एक नाम है कुसुमा सोराब। कुसुमा एक डॉक्टर थीं। चार साल पहले उत्तर कन्नड की एक बड़ी परियोजना के विरुद्ध स्टे ऑर्डर दायर करके लौटते वक्त उनका देहान्त हो गया था। लोगों के बीच कुसुमा अक्का नाम से पहचानी जाने वाली सोराब गांधीवादी थीं और मेधा पाटकर के जन आंदोलन और बहुगुणा के चिपको अभियान का हिस्सा रही थीं। उन्होंने उत्तर कन्नड परिसर कूटा की स्थापना की। उन्होंने शरावती, कैगा, बेडती और ताज रिज़ॉर्ट परियोजनाओं के विरुद्ध लड़ाई लड़ी। वे पश्चिम घाट बचाओ मुहिम से जुड़ीं और संयुक्त वन योजना की नींव रखी। गांधीवादी के रूप में उन्होंने उत्तर कन्नड के कई स्थानों पर विकलांग लोगों के लिए स्कूल खोले, रात्रि स्कूल व महिला मण्डल बनाए और देहाती दवाओं के लिए प्रयोगशालाएं बनाईं। उनके नेतृत्व में उत्तर कन्नड उलीसी आंदोलन ने 20 मांगें रखीं। इनमें शामिल हैं उत्तर कन्नड को वन-कृषि-मत्स्य ज़िला घोषित करना, पर्यटन योजना का त्याग, करवर और अंकोला बंदरगाहों का निजीकरण न करना, वानिकी की पुनर्रचना, कैगा आणविक संयंत्र पर रोक और कोंकण रेल्वे और अन्य परियोजनाओं के विस्थापितों का पुनर्वास। इन सब में कुसुमा सोराब की अहम भूमिका रही। एक इकॉलॉजिविद/पर्यावरणविद के रूप में उन्होंने मुद्दों को वैश्वीकरण/पश्चिमी पूंजीवाद के वृहद परिप्रेक्ष्य में समझा और विश्लेषित किया। लेकिन साथ ही उन्होंने गांधीवादी मूल्यों/उदारतावाद के दायरे को लांघा नहीं। भारत में खास तौर पर कर्नाटक की पर्यावरण संबंधी बौद्धिक बहसों में उन्हें उचित स्थान मिलना ही चाहिए।

उत्तर-औपनिवेशिक इतिहास में कर्नाटक में व्यक्तियों के अलावा कई पर्यावरण आंदोलनों का भी मुख्य हाथ रहा है। ऐसा ही एक आंदोलन है कितिको हरिको चालुवाली जिसे आम तौर पर कुसनुर होराटा के नाम से जाना जाता है। 80 के दशक के अन्त में धारवाड़ ज़िले में इसने काफी ख्याति प्राप्त की। यह संघर्ष तब शुरू हुआ जब

कर्नाटक सरकार ने 30,000 हैक्टर ज़मीन हरिहर पॉलीफाइबर कम्पनी को नीलगिरि के पौध लगाने हेतु लीज़ पर दे दी। इससे सामाजिक वानिकी की भव्य रूपरेखा की शुरुआत थी। बाद में यह मोनोकल्चर में तब्दील हो गया। समाज परिवर्तन समुदाय ने उन किसानों का मुद्दा उठाया जो विस्थापित हो गए थे और जिनका रोज़गार छिन गया था। 4 नवम्बर, 1987 के दिन किसानों ने कुसनुर ग्राम में हज़ारों पौधों को उखाड़ फेंका। नतीजतन सरकार ने कम्पनी बंद करने का ऐलान किया। उसी दशक के दौरान उत्तर कन्नड में अपिको चलुवली (चिपको) मुहिम शुरू हुई। यह बालेगड़े ग्राम से शुरू हुआ और लगातार 38 दिनों तक चला। कोजेन्ट्रिक्स जैसी बड़ी परियोजनाओं के विरुद्ध संघर्ष की तरह ही उसी दशक में बेडती परियोजना के विरुद्ध आंदोलन छिड़ा। अभी हाल में कोजेन्ट्रिक्स ने भारत से पांव खींच लिए हैं। हालांकि अन्य सामाजिक आंदोलनों के व्यापक जुड़ाव से पर्यावरण संबंधी मुद्दे भी इसमें आ मिलते रहे। ऐसा ही एक किसान संघर्ष था कर्नाटक राज्य रैयत संघ। इसने सामाजिक वानिकी, खनन, डम्पिंग, शहरी परिवेश, वायु प्रदूषण और हाल में बीटी कपास और जैव विविधता को पेटेंट कराने को लेकर अपने विरोध के ज़रिए पर्यावरण के प्रति अपना सरोकार दिखाया। यहां तक कि दलित आंदोलनों ने भी सामाजिक वानिकी में मोनोकल्चर के विरोध के ज़रिए इन मुद्दों को उठाया। बहरहाल ये मुद्दे विभिन्न वैचारिक धाराओं, बहसों और वर्गों को शामिल करते हुए एक व्यापक आधार वाले पर्यावरण आंदोलन का रूप न ले सके। कुदरेमुख का हालिया संघर्ष वर्ग, वैचारिक धाराओं, बहसों और श्रेणियों की सीमाएं लांघने में सफल रहा।

खनन की लीज़ को आगे बढ़ाने के विरोध के अलावा तीन महत्वपूर्ण मुद्दे और हैं। ये इकॉलॉजी/पर्यावरण के वृहत्तर मुद्दों से जुड़े हैं और उनके इर्द-गिर्द घूमते हैं - कुदरेमुख क्षेत्र को राष्ट्रीय उद्यान घोषित करना, आदिवासियों के मुद्दे और उनके अधिकार और तुंग उलीसी (तुंग बचाओ)। ये कुदरेमुख लौह अयस्क कम्पनी के विरुद्ध व्यापक संघर्ष के हिस्से हैं। ये आपस में जुड़े हैं और इन्होंने विभिन्न बहसों और नज़रियों को जन्म दिया है।

पर्यावरणवादियों की दलीलें

आंदोलन के व्यापक मुद्दों से सरोकार रखने वाले बुद्धिजीवियों के अलावा इस पर्यावरण आंदोलन के भीतर दो धाराएं हैं। दक्षिण कन्नड परिसरास्कतारा ओक्कुटा, पर्यावरण समर्थक समूह, वाइल्ड लाइफ फर्स्ट, कल्पवृक्ष, एन्वॉयरमेंट एक्शन ग्रुप, ग्रीन वॉचर्स एसोसिएशन, नेचर कन्ज़र्वेशन गाइड एक तरह की धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये सभी क्रिटिकल आधुनिकतावादी, उदारवादी/गांधीवादी, सिविल सोसाइटी समूह हैं। खनन को और आगे मंज़ूरी दिए जाने के उनके विरोध के मुख्य आधार हैं - समय-समय पर कम्पनी द्वारा गम्भीर इकॉलॉजिकल समस्याएं खड़ी करना, प्रदूषण, संरक्षण और पर्यावरण सुरक्षा के नियमों का उल्लंघन। विरोध का एक कारण यह भी था कि पता चला था कि कम्पनी कर्नाटक और आंध्रप्रदेश की अहम जीवन रेखा भद्रा नदी की सिंचाई की सम्भावनाओं को काफी नुकसान पहुंचा रही है। पाइपलाइन से रिसता द्रव इकॉलॉजी को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। वे कहते हैं कि KIOCL के पिछले 25 सालों के खनन कार्य ने शोला जंगल को छितरा दिया है और जगह जगह खनन से निकले मलबे के ढेर लगे हैं। कई प्रकृतिवादियों ने खनन कार्य से निकले मलबे के ढेरों को मछलियों की कई प्रजातियों के गायब होने, कृषि भूमि की उत्पादकता गिरने का दोषी माना है। नदी प्रदूषण के चलते वहां के रहवासी कई तरह की बीमारियों की शिकायत करने लगे हैं। गौरतलब है कि यही नदी पीने के पानी का मुख्य स्रोत है। वे यह भी मांग करने लगे हैं कि कम्पनी को बेल्लारी ज़िले में संदूर क्षेत्र में ले जाया जाए। जहां लौह अयस्क की मात्रा काफी ज़्यादा (60 प्रतिशत) है। इस सब के साथ कुछ मुद्दों में मतभेद भी हैं। मसलन ग्रीन वॉचर्स राष्ट्रीय उद्यान और आदिवासियों को किसी अन्य स्थान पर बसाने के पक्ष में हैं। दूसरी तरफ दक्षिण कन्नड परिसरास्कतारा आक्कुटा

राष्ट्रीय उद्यान के भीतर जंगलों के तमाम परम्परागत अधिकारों के साथ आदिवासियों को रहने देने का हामी है।

कुदरेमुख राष्ट्रीय उद्यान विरोधी आक्कुटा (कुदरेमुख राष्ट्रीय उद्यान विरोधी संगठन) की तरफ से इस पर बुनियादी चर्चा हुई। उसका विश्लेषण ज़्यादा व्यापक है। इसमें मुद्दों को ऐतिहासिक और भौतिकवादी नज़रिए से देखने की कोशिश की गई है साथ ही वैश्वीकरण के व्यापक परिप्रेक्ष्य से भी इसे देखा गया है। यह तुंग उलीसी आंदोलन को और पैना बना रहा है। यह पर्यावरण समूह राष्ट्रीय उद्यान की बहस में इको संरक्षण को सिरे से खारिज करता है। आदिवासियों की बेदखली के उनके विरोध की जड़ें इन ऐतिहासिक तर्कों में हैं कि इतिहास में जंगलों का हड़पना पूंजीवाद द्वारा हुआ है न कि आदिवासियों द्वारा। इसमें मुख्यतः तीन तरह के पूंजीवाद की भूमिका रही - व्यापारिक पूंजीवाद, औद्योगिक पूंजीवाद और वित्तीय पूंजीवाद। यह पूरा शोषण औपनिवेशिक रणनीति के एक हिस्से के बतौर हुआ। इस रणनीति में विस्तार आदिवासियों की ज़मीन/राज पर कब्ज़ा जमाने सहित कुछ और नियमों की शक्ल में हुआ जो दरअसल आदिवासियों की सामाजिक-राजनैतिक सत्ता हड़पने के औज़ार थे। इसी तरह पश्चिमी घाट भी सत्ता विस्तार की औपनिवेशिक राजनीति का शिकार बनाः माचिस की तीलियां बनाने और रेल पटरियां बिछाने के लिए जंगलों को लूटा गया, कॉफी प्लांटेशन के लिए जंगल साफ किए गए ताकि वहां और उसके आसपास पूंजीवादी अर्थव्यवस्था रोपी जा सके। औपनिवेशिक काल पश्चात् भी यही प्रवृत्तियां बनी रहीं। बस फर्क इतना था कि इसमें कुछ नए मुद्दे और जुड़ गए। कॉफी प्लांटेशन के लिए लगभग 80,000 हैक्टर ज़मीन, बांधों के लिए 65,000 हैक्टर, खनन के लिए 63,000 हैक्टर और अकेसिया रोपने के लिए 35,000 हैक्टर ज़मीन साफ की गई। संगठन का कहना है, "उपनिवेशवादियों ने जो काम 200 सालों में किया वो आज़ाद भारत ने 50 सालों में ही कर दिखाया।" इस संदर्भ में आंदोलन ने दो और पहलुओं को जोड़ा। एक, प्लांटेशन अर्थव्यवस्था के इतर किसी और बहाने भारतीय पूंजीवाद को बढ़ाने की इच्छा, दूसरा, वैश्वीकरण। दूसरे मामले में विशाल पश्चिमी पूंजी का मकसद है जैव विविधता पर काबिज़ होना। और इस तरह जंगलों को राष्ट्रीय उद्यान घोषित कर तीसरी दुनिया के देशों पर आर्थिक साम्राज्यवाद को पुनः पदस्थ करना। इसीलिए राष्ट्रीय उद्यानों का विरोध आदिवासियों की बहाली का मुद्दा बन जाता है। इसके अलावा देश की नव-औपनिवेशिकता का विरोध तथा सरकार और वैश्वीकरण/पश्चिमी पूंजीवाद के बीच के बड़े सम्बंध का विरोध भी इसमें आ जुड़ता है। इसी तरह का एक तर्क तुंग बचाओ संघर्ष में विचारणीय है। देखा जाए तो इस सैद्धान्तिक निरूपण की कुछ समस्याएं हैं - पर्यावरण और पूंजीवाद से उभर रहे विरोधाभास को किस तरह से देखें।

कुछ ऐसे भी संगठन हैं जो कुदरेमुख को बंद करने के विरोध में हैं। ये समूह हैं - कम्पनी के श्रमिक/भारतीय किसान संघ, नव मैंगलोर बंदरगाह की श्रमिक यूनियन, एम.सी.एफ. श्रमिक यूनियन और आई.टी.आई. का कुदरेमुख बचाओ संगठन। इनका मुख्य सरोकार इकॉलॉजिकल मुद्दों की बजाए श्रमिकों के हितों की रक्षा है। कम्पनी बंद होने की सूरत में इन श्रमिकों की छंटनी हो जाएगी।

हिन्द मज़दूर सभा और कुदरेमुख श्रम-शक्ति संघठन ने खनन की लीज़ को 20 सालों तक बढ़ाने की मांग की है। उनका कहना है कि खनन कार्य का पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। उनका यह भी कहना है कि खनन कार्य बन्द हो जाने का अर्थ है इतने सालों के बने-बनाए इंफ्रास्टक्चर की बरबादी।

कुदरेमुख परियोजना के समर्थन में खड़ा एक प्रमुख वाम समूह हैं - डेमोक्रेटिक यूथ फेडरेशन ऑफ इंडिया। यह वामपंथियों की एक शाखा है। उनके लिए कुदरेमुख का बना रहना 2454 श्रमिकों की आजीविका समेत, एक वैचारिक मुद्दा है। लगभग 3000 परिवारों की आजीविका इन्हीं खनन कार्यों पर टिकी है। पर्यावरणवादियों से इनका मतभेद एक बात पर है- ये इकॉलॉजी सम्बंधी